"कफ़न"

झोंपड़े के दरवाज़े पर बाप और बेटा दोनों एक बुझे हुए अलाव के सामने ख़ामोश बैठे हुए थे और अन्दर बेटे की नौजवान बीवी बुधिया दर्द-ए-ज़ेह से पछाड़ें खा रही थी और रह-रह कर उसके मुँह से ऐसी दिल-ख़राश सदा निकलती थी कि दोनों कलेजा थाम लेते थे।

जाड़ों की रात थी, फ़ज़ा सन्नाटे में ग़र्क़, सारा गाँव तारीकी में जज़्ब हो गया था।

घीसू ने कहा, "मालूम होता है बचेगी नहीं। सारा दिन तड़पते हो गया, जा देख तो आ।"

माधव दर्दनाक लहजे में बोला, "मरना ही है तो जल्दी मर क्यूँ नहीं जाती। देख कर क्या आऊँ।"

"तू बड़ा बे-दर्द है बे! साल भर जिसके साथ जिंदगानी का सुख भोगा उसी के साथ इतनी बेवफाई।"

"तो मुझ से तो उसका तड़पना और हाथ-पाँव पटकना नहीं देखा जाता।"

चमारों का कुनबा था और सारे गाँव में बदनाम। घीसू एक दिन काम करता तो तीन दिन आराम, माधव इतना कामचोर था कि घंटे भर काम करता तो घंटे भर चिलम पीता। इसलिए उसे कोई रखता ही न था। घर में मुट्ठी भर अनाज भी मौजूद हो तो उनके लिए काम करने की क़सम थी। जब दो एक फ़ाक़े हो जाते तो घीसू दरख़्तों पर चढ़ कर लकड़ी तोड़ लाता और माधव बाज़ार से बेच लाता और जब तक वो पैसे रहते, दोनों इधर-उधर मारे-मारे फिरते। जब फ़ाक़े की नौबत आ जाती तो फिर लकड़ियाँ तोड़ते या कोई मज़दूरी तलाश करते। गाँव में काम की कमी न थी। काश्तकारों का गाँव था। मेहनती आदमी के लिए पचास काम थे मगर उन दोनों को लोग उसी वक़्त बुलाते जब दो आदमियों से एक का काम पा कर भी क़नाअत कर लेने के सिवा और कोई चारा न होता। काश दोनों साधू होते तो उन्हें क़नाअत और तवक्कुल के लिए ज़ब्त-ए-नफ़्स की मुतलक़ ज़रूरत न होती। ये उनकी ख़ल्क़ी सिफ़त थी।

अजीब ज़िंदगी थी उनकी। घर में मिट्टी के दो चार बर्तनों के सिवा कोई असासा नहीं। फटे चीथड़ों से अपनी उर्यानी को ढाँके हुए दुनिया की फ़िक्रों से आज़ाद। क़र्ज़ से लदे हुए। गालियाँ भी खाते, मार भी खाते मगर कोई ग़म नहीं। मिस्कीन इतने कि वसूली की मुतलक़ उम्मीद न होने पर लोग उन्हें कुछ न कुछ क़र्ज़ दे देते थे। मटर या आलू की फ़स्ल में खेतों से मटर या आलू उखाड़ लाते और भून-भून कर खाते या दिन में दस-पाँच ईख तोड़ लाते और रात को चूसते। घीसू ने इसी ज़ाहिदाना अंदाज़ में साठ साल की उम्र काट दी और माधव भी सआदतमंद बेटे की तरह बाप के नक़्श-ए-क़दम पर चल रहा था बल्कि उसका नाम और भी रौशन कर रहा था।

उस वक़्त भी दोनों अलाव के सामने बैठे हुए आलू भून रहे थे जो किसी के खेत से खोद लाए थे। घीसू की बीवी का तो मुद्दत हुई इंतिक़ाल हो गया था। माधव की शादी पिछले साल हुई थी। जब से ये औरत आई थी, उसने इस ख़ानदान में तमद्दुन की बुनियाद डाली थी। पिसाई कर के, घास छील कर वो सेर भर आटे का इंतिज़ाम कर लेती थी और इन दोनों बे-ग़ैरतों का दोज़ख़ भरती रहती थी। जब से वो आई, ये दोनों और भी आराम-तलब और आलसी हो गए थे बल्कि कुछ अकड़ने भी लगे थे। कोई

काम करने को बुलाता तो बे-नियाज़ी की शान में दोगुनी मज़दूरी माँगते। वही औरत आज सुब्ह से दर्द-ए-ज़ेह में मर रही थी और ये दोनों शायद इसी इंतिज़ार में थे कि वो मर जाए तो आराम से सोएँ।

घीसू ने आलू निकाल कर छीलते हुए कहा, "जा देख तो क्या हालत है, उसकी चुड़ैल का फसाद होगा और क्या। यहाँ तो ओझा भी एक रुपये माँगता है। किस के घर से आए।"

माधव को अंदेशा था कि वो कोठरी में गया तो घीसू आलुओं का बड़ा हिस्सा साफ़ कर देगा। बोला,

"मुझे वहाँ डर लगता है।"

"डर किस बात का है? मैं तो यहाँ हूँ ही।"

"तो तुम्हीं जा कर देखो न।"

"मेरी औरत जब मरी थी तो मैं तीन दिन तक उसके पास से हिला भी नहीं और फिर मुझ से लजाएगी कि नहीं, कभी उसका मुँह नहीं देखा, आज उसका उधड़ा हुआ बदन देखूँ। उसे तन की सुध भी तो न होगी। मुझे देख लेगी तो खुल कर हाथ पाँव भी न पटक सकेगी।"

"मैं सोचता हूँ कि कोई बाल बच्चा हो गया तो क्या होगा। सोंठ, गुड़, तेल, कुछ भी तो नहीं है घर में।"

"सब कुछ आ जाएगा। भगवान बच्चा दें तो, जो लोग अभी एक पैसा नहीं दे रहे हैं, वही तब बुला कर देंगे। मेरे तो लड़के हुए, घर में कुछ भी न था, मगर इस तरह हर बार काम चल गया।"

जिस समाज में रात दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी और किसानों के मुक़ाबले में वो लोग जो किसानों की कमज़ोरियों से फ़ायदा उठाना जानते थे, कहीं ज़्यादा फ़ारिग़-उल-बाल थे, वहाँ इस क़िस्म की ज़हनियत का पैदा हो जाना कोई तअ'ज्जुब की बात नहीं थी।

हम तो कहेंगे घीसू किसानों के मुक़ाबले में ज़्यादा बारीक-बीन था और किसानों की तही-दिमाग़ जमईयत में शामिल होने के बदले शातिरों की फ़िल्ला-परदाज़ जमा'अत में शामिल हो गया था। हाँ उसमें ये सलाहियत न थी कि शातिरों के आईन-ओ-आदाब की पाबंदी भी करता। इसलिए ये जहाँ उसकी जमा'अत के और लोग गाँव के सर्ग़ना और मुखिया बने हुए थे, उस पर सारा गाँव अंगुश्त-नुमाई कर रहा था। फिर भी उसे ये तस्कीन तो थी ही कि अगर वो ख़स्ताहाल है तो कम से कम उसे किसानों की सी जिगर तोड़ मेहनत तो नहीं करनी पड़ती और उसकी सादगी और बे-ज़बानी से दूसरे बेजा फ़ायदा तो नहीं उठाते।

दोनों आलू निकाल-निकाल कर जलते-जलते खाने लगे। कल से कुछ भी नहीं खाया था। इतना सब्र न था कि उन्हें ठंडा हो जाने दें। कई बार दोनों की ज़बानें जल गईं। छिल जाने पर आलू का बैरूनी हिस्सा तो ज़्यादा गर्म न मालूम होता था लेकिन दाँतों के तले पड़ते ही अंदर का हिस्सा ज़बान और हल्क़ और तालू को जला देता था और इस अंगारे को मुँह में रखने से ज़्यादा ख़ैरियत इसी में थी कि वो अंदर पहुँच जाए। वहाँ उसे ठंडा करने के लिए काफ़ी सामान थे। इसलिए दोनों जल्द-जल्द निगल जाते थे हालाँकि इस कोशिश में उनकी आँखों से आँसू निकल आते।

घीसू को उस वक़्त ठाकुर की बरात याद आई जिसमें बीस साल पहले वो गया था। उस दावत में उसे जो सेरी नसीब हुई थी, वो उसकी ज़िंदगी में एक यादगार वाक़िआ थी और आज भी उसकी याद ताज़ा थी। वो बोला, "वो भोज नहीं भूलता। तब से फिर इस तरह का खाना और भर पेट नहीं मिला। लड़की वालों ने सब को पूड़ियाँ खिलाई थीं, सब को। छोटे बड़े सब ने पूड़ियाँ खाईं और असली घी की। चटनी, रायता, तीन तरह के सूखे साग, एक रसेदार तरकारी, दही, चटनी, मिठाई अब क्या बताऊँ कि उस भोज में कितना स्वाद मिला।

कोई रोक नहीं थी। जो चीज़ चाहो माँगो और जितना चाहो खाओ। लोगों ने ऐसा खाया, ऐसा खाया कि किसी से पानी न पिया गया, मगर परोसने वाले हैं कि सामने गर्म गोल गोल महकती हुई कचौरियाँ डाल देते हैं। मना करते हैं, नहीं चाहिए मगर वो हैं कि दिए जाते हैं और जब सब ने मुँह धो लिया तो एक-एक बीड़ा पान भी मिला मगर मुझे पान लेने की कहाँ सुध थी। खड़ा न हुआ जाता था। झटपट जा कर अपने कम्बल पर लेट गया। ऐसा दरिया दिल था वो ठाकुर।"

माधव ने उन तकल्लुफ़ात का मज़ा लेते हुए कहा, "अब हमें कोई ऐसा भोज खिलाता।"

"अब कोई क्या खिलाएगा? वो जमाना दूसरा था। अब तो सब को किफायत सूझती है। सादी ब्याह में मत खर्च करो, क्रिया-कर्म में मत खर्च करो। पूछो गरीबों का माल बटोर-बटोर कर कहाँ रक्खोगे। मगर बटोरने में तो कमी नहीं है। हाँ खर्च में किफायत सूझती है।"

"तुमने एक बीस पूड़ियाँ खाई होंगी।"

"बीस से ज्यादा खाई थीं।"

"मैं पचास खा जाता।"

"पचास से कम मैंने भी न खाई होंगी, अच्छा पट्ठा था। तू उसका आधा भी नहीं है।" आलू खा कर दोनों ने पानी पिया और वहीं अलाव के सामने अपनी धोतियाँ ओढ़ कर पाँव पेट में डाल कर सो रहे। जैसे दो बड़े-बड़े अज़दहे कुंडलियाँ मारे पड़े हों और बुधिया अभी तक कराह रही थी।

(2)

सुब्ह को माधव ने कोठरी में जा कर देखा तो उसकी बीवी ठंडी हो गई थी। उसके मुँह पर मक्खियाँ भिनक रही थीं। पथराई हुई आँखें ऊपर टँगी हुई थीं। सारा जिस्म ख़ाक में लतपत हो रहा था। उसके पेट में बच्चा मर गया था।

माधव भागा हुआ घीसू के पास आया और फिर दोनों ज़ोर-ज़ोर से हाय-हाय करने और छाती पीटने लगे। पड़ोस वालों ने ये आह-ओ-ज़ारी सुनी तो दौड़ते हुए आए और रस्म-ए-क़दीम के मुताबिक़ ग़मज़दों की तशफ़्फ़ी करने लगे।

मगर ज़्यादा रोने-धोने का मौक़ा न था, कफ़न की और लकड़ी की फ़िक्र करनी थी। घर में तो पैसा इस तरह ग़ायब था जैसे चील के घोंसले में माँस।

बाप-बेटे रोते हुए गाँव के ज़मींदारों के पास गए। वो उन दोनों की सूरत से नफ़रत करते थे। कई बार उन्हें अपने हाथों पीट चुके थे। चोरी की इल्लत में, वादे पर काम न करने की इल्लत में।

पूछा, "क्या है बे घिसुवा, रोता क्यूँ है, अब तो तेरी सूरत ही नज़र नहीं आती, अब मालूम होता है तुम इस गाँव में नहीं रहना चाहते।"

घीसू ने ज़मीन पर सर रख कर आँखों में आँसू भरते हुए कहा, "सरकार बड़ी बिपता में हूँ। माधव की घर वाली रात गुजर गई। दिन भर तड़पती रही सरकार। आधी रात तक हम दोनों उसके सिरहाने बैठे रहे। दवा-दारू जो कुछ हो सका सब किया मगर वो हमें दगा दे गई, अब कोई एक रोटी देने वाला नहीं रहा मालिक, तबाह हो गए। घर उजड़ गया, आप का गुलाम हूँ, अब आपके सिवा उसकी मिट्टी कौन पार लगाएगा, हमारे हाथ में जो कुछ था, वो सब दवा-दारू में उठ गया, सरकार ही की दया होगी तो उसकी मिट्टी उठेगी, आप के सिवा और किस के द्वार पर जाऊँ।"

ज़मींदार साहब रहम-दिल आदमी थे मगर घीसू पर रहम करना काले कम्बल पर रंग चढ़ाना था। जी में तो आया कह दें, "चल दूर हो यहाँ से लाश घर में रख कर सड़ा। यूँ तो बुलाने से भी नहीं आता। आज जब ग़रज़ पड़ी तो आ कर ख़ुशामद कर रहा है हराम-ख़ोर कहीं का बदमाश।" मगर ये ग़ुस्से या इंतिक़ाम का मौक़ा नहीं था। तौअन-ओ-करहन दो रुपये निकाल कर फेंक दिए मगर तशफ़्फ़ी का एक कलमा भी मुँह से न निकाला। उसकी तरफ़ ताका तक नहीं। गोया सर का बोझ उतारा हो। जब ज़मींदार साहब ने दो रुपये दिए तो गाँव के बनिए महाजनों को इंकार की जुरअ'त क्यूँ-कर होती।

घीसू ज़मींदार के नाम का ढिंडोरा पीटना जानता था। किसी ने दो आने दिए, किसी ने चार आने। एक घंटे में घीसू के पास पाँच रुपये की माक़ूल रक़म जमा हो गई। किसी ने ग़ल्ला दे दिया, किसी ने लकड़ी और दोपहर को घीसू और माधव बाज़ार से कफ़न लाने चले और लोग बाँस-वाँस काटने लगे।

गाँव की रक़ीक़-उल-क़ल्ब औरतें आ-आ कर लाश को देखती थीं और उसकी बे-बसी पर दो बूँद आँसू गिरा कर चली जाती थीं।

(3)

बाज़ार में पहुँच कर घीसू बोला, "लकड़ी तो उसे जलाने भर की मिल गई है क्यूँ माधव।"

माधव बोला, "हाँ लकड़ी तो बहुत है, अब कफ़न चाहिए।"

"तो कोई हल्का सा कफ़न ले-लें।"

"हाँ और क्या! लाश उठते-उठते रात हो जाएगी। रात को कफ़न कौन देखता है।"

"कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते जी तन ढाँकने को चीथड़ा न मिले, उसे मरने पर नया कफ़न चाहिए।"

"और क्या रखा रहता है। यही पाँच रुपये पहले मिलते तो कुछ दवा दारू करते।"

दोनों एक दूसरे के दिल का माजरा मानवी तौर पर समझ रहे थे। बाज़ार में इधर-उधर घूमते रहे। यहाँ तक कि शाम हो गई। दोनों इत्तिफ़ाक़ से या अमदन एक शराब ख़ाने के सामने आ पहुँचे और गोया किसी तय-शुदा फ़ैसले के मुताबिक़ अंदर गए। वहाँ ज़रा देर तक दोनों तज़बज़ुब की हालत में खड़े रहे। फिर घीसू ने एक बोतल शराब ली। कुछ गजक ली और दोनों बरामदे में बैठ कर पीने लगे।

कई कुज्जियाँ पैहम पीने के बाद दोनों सुरूर में आ गए।

घीसू बोला, "कफ़न लगाने से क्या मिलता। आखिर जल ही तो जाता। कुछ बहू के साथ तो न जाता।"

माधव आसमान की तरफ़ देख कर बोला, गोया फ़रिश्तों को अपनी मासूमियत का यक़ीन दिला रहा हो। "दुनिया का दस्तूर है। यही लोग बामनों को हजारों रुपये क्यूँ देते हैं। कौन देखता है। परलोक में मिलता है या नहीं।"

"बड़े आदमियों के पास धन है फूँकें, हमारे पास फूँकने को क्या है।"

"लेकिन लोगों को क्या जवाब दोगे? लोग पूछेंगे कि कफ़न कहाँ है?"

घीसू हँसा, "कह देंगे कि रुपये कमर से खिसक गए। बहुत ढूँढा, मिले नहीं।"

माधव भी हँसा, इस ग़ैर मुतवक़्क़े ख़ुश-नसीबी पर क़ुदरत को इस तरह शिकस्त देने पर बोला, "बड़ी अच्छी थी बेचारी। मरी भी तो ख़ूब खिला-पिला कर।"

आधी बोतल से ज़्यादा ख़त्म हो गई। घीसू ने दो सेर पूरियाँ मँगवाईं, गोश्त और सालन और चटपटी कलेजियाँ और तली हुई मछलियाँ।

शराब ख़ाने के सामने दुकान थी, माधव लपक कर दो पत्तलों में सारी चीज़ें ले आया। पूरे डेढ़ रुपये ख़र्च हो गए, सिर्फ़ थोड़े से पैसे बच रहे।"

दोनों उस वक़्त इस शान से बैठे हुए पूरियाँ खा रहे थे जैसे जंगल में कोई शेर अपना शिकार उड़ा रहा हो। न जवाब-देही का ख़ौफ़ था न बदनामी की फ़िक्र। ज़ोफ़ के इन मराहिल को उन्होंने बहुत पहले तय कर लिया था। घीसू फ़लसफ़ियाना अंदाज़ से बोला, "हमारी आत्मा प्रसन्न हो रही है तो क्या उसे पुन्य न होगा।"

माधव ने सर-ए-अ'क़ीदत झुका कर तसदीक़ की, "जरूर से जरूर होगा। भगवान तुम अंतरयामी (अ'लीम) हो। उसे बैकुंठ ले जाना। हम दोनों हृदय से उसे दुआ दे रहे हैं। आज जो भोजन मिला वो कभी उम्र भर न मिला था।"

एक लम्हे के बाद माधव के दिल में एक तशवीश पैदा हुई। बोला, "क्यूँ दादा हम लोग भी तो वहाँ एक न एक दिन जाएँगे ही।"

घीसू ने इस तिफ़्लाना सवाल का कोई जवाब न दिया। माधव की तरफ़ पुर-मलामत अंदाज़ से देखा।

"जो वहाँ हम लोगों से पूछेगी कि तुमने हमें कफ़न क्यूँ न दिया, तो क्या कहेंगे?"

“कहेंगे तुम्हारा सर।”

“पूछेगी तो जरूर।”

“तू कैसे जानता है उसे कफ़न न मिलेगा? मुझे अब गधा समझता है। मैं साठ साल दुनिया में क्या घास खोदता रहा हूँ। उसको कफ़न मिलेगा और इससे बहुत अच्छा मिलेगा, जो हम देंगे।”

माधव को यक़ीन न आया। बोला, “कौन देगा? रुपये तो तुमने चट कर दिए।”

घीसू तेज़ हो गया, “मैं कहता हूँ उसे कफ़न मिलेगा तो मानता क्यूँ नहीं?”

“कौन देगा, बताते क्यूँ नहीं?”

“वही लोग देंगे जिन्होंने अब के दिया। हाँ वो रुपये हमारे हाथ न आएँगे और अगर किसी तरह आ जाएँ तो फिर हम इस तरह बैठे पिएँगे और कफ़न तीसरी बार लेगा।”

जूँ-जूँ अंधेरा बढ़ता था और सितारों की चमक तेज़ होती थी, मय-ख़ाने की रौनक़ भी बढ़ती जाती थी। कोई गाता था, कोई बहकता था, कोई अपने रफ़ीक़ के गले लिपटा जाता था, कोई अपने दोस्त के मुँह से साग़र लगाए देता था। वहाँ की फ़िज़ा में सुरूर था, हवा में नशा। कितने तो चुल्लू में ही उल्लू हो जाते हैं। यहाँ आते थे तो सिर्फ़ ख़ुद-फ़रामोशी का मज़ा लेने के लिए। शराब से ज़्यादा यहाँ की हवा से मसरूर होते थे। ज़ीस्त की बला यहाँ खींच लाती थी और कुछ देर के लिए वो भूल जाते थे कि वो ज़िंदा हैं या मुर्दा हैं या ज़िंदा-दर-गोर हैं।

और ये दोनों बाप-बेटे अब भी मज़े ले ले के चुसकियाँ ले रहे थे। सब की निगाहें उनकी तरफ़ जमी हुई थीं। कितने ख़ुश-नसीब हैं दोनों, पूरी बोतल बीच में है।

खाने से फ़ारिग़ हो कर माधव ने बची हुई पूरियों का पत्तल उठा कर एक भिकारी को दे दिया, जो खड़ा उनकी तरफ़ गुरसना निगाहों से देख रहा था और “देने” के ग़ुरूर और मसर्रत और वलवले का, अपनी ज़िंदगी में पहली बार एहसास किया। घीसू ने कहा, “ले जा खूब खा और असीरबाद दे, जिसकी कमाई थी वो तो मर गई मगर तेरा असीरबाद उसे जरूर पहुँच जाएगा, रोएँ रोएँ से असीरबाद दे, बड़ी गाढ़ी कमाई के पैसे हैं।”

माधव ने फिर आसमान की तरफ़ देख कर कहा, “वो बैकुंठ में जाएगी। दादा बैकुंठ की रानी बनेगी।”

घीसू खड़ा हो गया और जैसे मसर्रत की लहरों में तैरता हुआ बोला, “हाँ बेटा बैकुंठ में न जाएगी तो क्या ये मोटे-मोटे लोग जाएँगे, जो गरीबों को दोनों हाथ से लूटते हैं और अपने पाप के धोने के लिए गंगा में जाते हैं और मंदिरों में जल चढ़ाते हैं।”

ये ख़ुश-ए'तिक़ादी का रंग भी बदला। तलव्वुन नशे की ख़ासियत है। यास और ग़म का दौरा हुआ। माधव बोला, “मगर दादा बेचारी ने जिंदगी में बड़ा दुख भोगा। मरी भी कितनी दुख झेल कर।” वो अपनी आँखों पर हाथ रख कर रोने लगा।

घीसू ने समझाया, “क्यूँ रोता है बेटा! खुस हो कि वो माया जाल से मुक्त हो गई। जंजाल से छूट गई। बड़ी भागवान थी जो इतनी जल्द माया के मोह के बंधन तोड़ दिए।”

और दोनों वहीं खड़े हो कर गाने लगे; ‘ठगनी क्यों नैना झमकावे! ठगनी।

सारा मय-ख़ाना महव-ए-तमाशा था और ये दोनों मैकश मख़मूर महवियत के आलम में गाए जाते थे। फिर दोनों नाचने लगे। उछले भी, कूदे भी, गिरे भी, मटके भी, भाव भी बताए और आख़िर नशे से बदमस्त हो कर वहीं गिर पड़े।

Xxxxxxxxxxx